# भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य, समाज, संस्कृति और भाषा

संपादक : डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

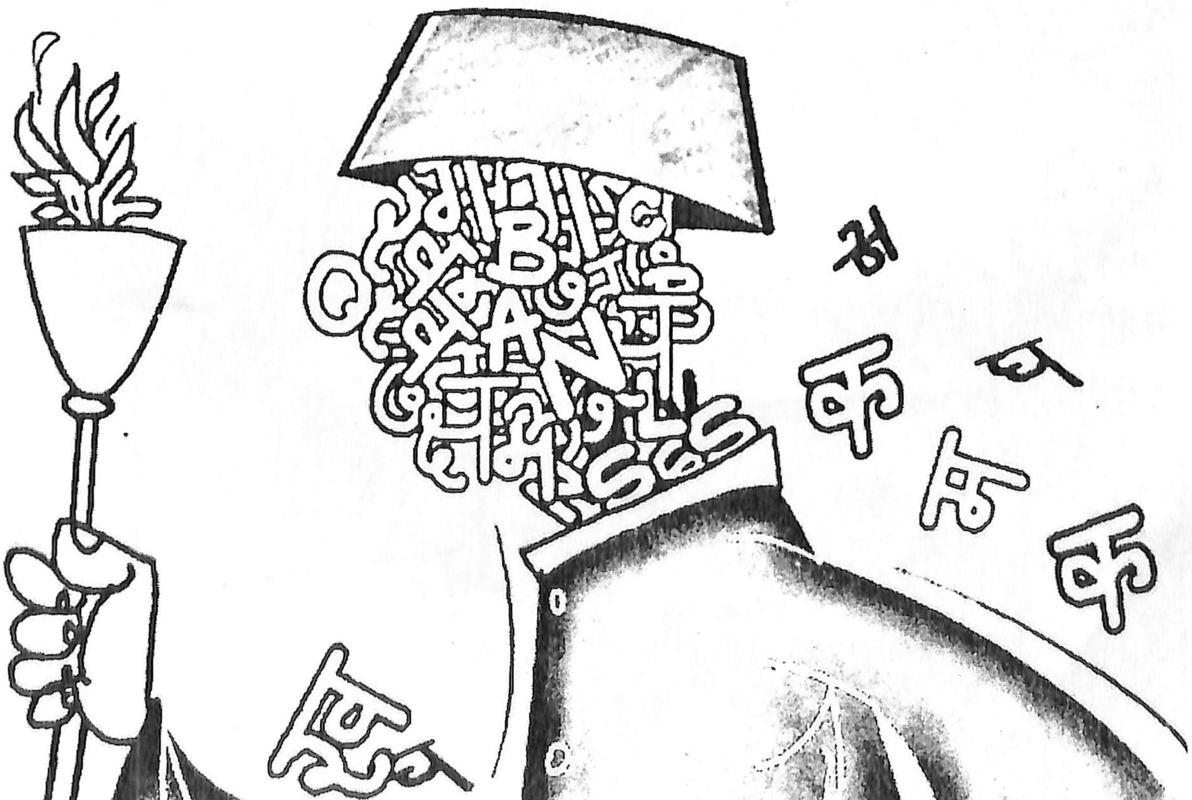

2016

# भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में
## साहित्य, समाज, संस्कृति और भाषा

संपादक
डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

सरस्वती प्रकाशन

ISBN : 978-93-81980-29-3

पुस्तक का नाम : भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में : साहित्य, समाज, संस्कृति और भाषा

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : 950.00

प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन
491/2एफ रामानन्द नगर, अल्लापुर, इलाहाबाद

एकमात्र वितरक : अनन्य प्रकाशन
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
011-22824606, 9971895162

सर्वाधिकार : संपादक

शब्द-सज्जा : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-32

मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-32

---

BHOOMANDALIKARAN KE PARIPRESHKY MEIN
SAHITAY, SAMAJ, SANSKRITI AUR BHASHA
*Edited by Dr. Pradeep Kumar Singh*

# आमुख

मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि साठ्ये महाविद्यालय विले पार्ले मुंबई में आदरणीया प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) कविता रेगे के दिशा निर्देश में हिंदी विभाग में नवीन पाठ्यक्रम पर कार्यशाला का आयोजन 2006 में किया गया था, उसके उपरांत तीन राष्ट्रीय संगोष्ठी और दो अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी सफलतापूर्वक संपन्न हो चुकी हैं। विद्वज्जनों की प्रेरणा व सान्निध्य का ही यह अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी एक परिणाम है। साठ्ये महाविद्यालय के हिंदी विभाग एवं अयोध्या शोध संस्थान, अयोध्या के संयुक्त तत्त्वावधान में 26-27 सितंबर, 2016 को भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य, समाज, संस्कृति और भाषा विषय पर यह अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न होने जा रही है।

यह अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य समाज़ एवं संस्कृति और भाषा पर पड़ने वाले प्रभाव को निश्चित ही उद्घाटित करेगी। यही नहीं 'साहित्य, समाज और रामकथा संदर्भ', हिंदी पद्य और गद्य साहित्य के विविध आयाम और उससे जुड़े अन्य विषयों पर भी विचार-विमर्श होगा। भूमंडलीकरण ने जिस गति से आज साहित्य, समाज और संस्कृति को झकझोर दिया है, उसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमें वर्तमान साहित्य में परिलक्षित होता है। हमारी यह कोशिश रही है कि विद्वानों के आने वाले सभी लेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जाये। बारंबार अनुरोध किये जाने पर भी कई लेख निर्धारित तिथि तक न भेजे जाने के कारण प्रकाशित नहीं किये जा सके। आलेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के हैं। उनके लिए रचनाकार स्वयं जिम्मेदार है। यह जरूरी नहीं है कि संपादक भी सहमत ही हो।

अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद प्राचार्य डॉ. कविता रेगे ने समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया, जिसके लिए उनके

# कुँवर नारायण की कविता में चित्रित आधुनिक मानव का संघर्ष : भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में

✍ **डॉ. राजेंद्र पोवार**

भूमंडलीकरण के प्रभाव से आज विश्व का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है, भाषा तथा संचार माध्यमों पर इसका पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। दूसरी तरफ समाज के दर्पण के रूप में साहित्य भी इस प्रभाव से अछूता नहीं है। आधुनिक काल के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त मेधावी तथा चिंतनशील कवि कुँवर नारायण ने भूमंडलीकरण के दौर में अपनी कविता में आधुनिक मानव का संघर्ष तथा मानवीय मूल्यों का चित्रण किया है। उनके अनुसार,—'कविता मानवीय मूल्य का पक्ष है और किसी भी तरह के अमानवीकरण के खिलाफ की प्रतिक्रिया।'[1]

कुँवर नारायण की प्रथम कृति 'चक्रव्यूह' मिथक पर आधारित है, जिसमें अभिमन्यु के मिथक में कवि अपने देश के हर युवक की प्रतिछवि देखता है। महाभारत का अभिमन्यु जिस तरह चक्रव्यूह में फँसा था, उसी तरह अन्याय, अत्याचार, छल-कपट, ऊँच-नीच, भेदभाव तथा शोषण रूपी चक्रव्यूह में फँसकर कलियुग के युवक की आशाएँ चूर-चूर हो गयीं। उन्हीं पूरे परिदृश्यों को कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रकट किया, परंतु इनमें कुंठा या हताशा का स्वर नहीं है, बल्कि कहता है कि आज के युवक को ऐसे अनेक युद्ध लड़ने हैं, दुष्ट शक्तियों से अकेले लोहा लेना है—

*"कौन कब तक बन सकेगा कवच मेरा?*
*युद्ध मेरा, मुझे लड़ना*
*इस महाजीवन समर में अंत कटि-ब्रद्ध*

*मेरे ही लिए यह व्यूह घेरा, मुझे हर आघात सहना,*
*गर्भ निश्चित मैं नया अभिमन्यु, पैतृक-युद्ध![2]"*

'परिवेश हम तुम' काव्यसंकलन में कवि यांत्रिक सभ्यता में पिसे मनुष्य की पीड़ा और दुःख व्यक्त करता है। यांत्रिक सभ्यता ने जिन नये औजारों को मनुष्य की रक्षा के लिए निर्मित किया, वही मनुष्यता के पतन के औजार बने–

*"अपने ही हथियारों से घबराया मानव*
*पत्थर का देव और लोहे का दानव।"*

मनुष्य अपने अस्तित्व के आगे मनुष्यता को ही भुला देता है–

*"अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य*
*अपने अतीत को दुहराता अंधा शविष्य।"[3]*

'अपने सामने' काव्यसंकलन की 'काले लोग' कविता में कवि ने समाज में व्याप्त भेदभाव पर दृष्टिपात किया है। इसी भेदभाव के कारण कुछ इंसानों को इंसान होने का दर्जा भी नहीं मिलता।

*"सुना वे भी इंसान हैं, मगर काले हैं,*
*जिन्हें कुछ गोरे जानवरों की तरह पाले हैं,*
*आदमी की किताब में इनकी भी*
*एक जात होती है–एक प्रकार होता है,*
*और इनकी असभ्यता से भी ज्यादा खतरनाक सभ्यता से*
*इनका शिकार होता है।"[4]*

'कोई दूसरा नहीं' में अनुभूति और चिंतन का जबरदस्त संतुलन है तथा उनके काव्य अनुभव और जीवन अनुभवों को बड़ी गहराई से साथ व्यक्त करता है। कुँवर नारायण यहाँ सार्थक मानव संबंधों की खोज करते हैं। वे अपनी जिंदगी में तन्हा नहीं रहना चाहते, ना ही जिंदगी से भागना चाहते हैं। वे संबंधों को दुनिया में जीने के लिए आतुर हैं और ये संबंध संकुचित न होकर विशाल हैं, व्यापक हैं। इसीलिए–

*मैं जिंदगी से भागना नहीं*
*उससे जुड़ना चाहता हूँ।*

*उसे झकझोरना चाहता हूँ*
*उसके काल्पनिक अक्ष पर*

*पराक्रम की धुरी पर*
*एक प्रगति-बिंदु*
*यांत्रिकता की अपेक्षा*
*मनुष्यता की ओर ज्यादा सरका हुआ...।*

1992 में घटित अयोध्या कांड का चित्रण भी कवि ने किया है। तब राजनीतिक दलों ने जिस तरह अयोध्या के विवादास्पद ढाँचे को लेकर राम के नाम पर एक जुट करने का चुनावी पैंतरा अपनाया, वह इस बदले हुए जटिल समाज की ईश्वरीय आस्था का कुत्सित चेहरा था। चुनावी राजनीति में राम को घसीटते हुए राजनीति ने मनुष्य समाज को जंगल से भी ज्यादा बीहड़ बना दिया था। उसका चित्रण कवि ने किया है।

*"हे राम*
*जीवन एक कटु यथार्थ है।*
*और तुम एक महाकाव्य!*

*इससे बड़ा क्या हो सकता है हमारा दुर्भाग्य...*

*अयोध्या इस समय तुम्हारी अयोध्या नहीं*
*योद्धाओं की लंका है,*
*'मानस' तुम्हारा 'चरित' नहीं*
*चुनाव का डंका है!*
*हे राम, कहाँ यह समय*
*कहाँ तुम्हारा त्रेता युग,*
*कहाँ तुम मर्यादा पुरुषोत्तम और कहाँ यह नेता-युग।"*[6]

संबंध बनाने से पहले मनुष्य हजार बार सोचता है, क्योंकि उसे डर है कहीं उसे धोखा तो नहीं होगा, दुःख तो नहीं पहुँचेगा। शायद इसीलिए ऊँच ऊँच से ही संबंध बनाते हैं, ज्ञानी ज्ञानी से, अमीर अमीर से, सज्जन सज्जन से, लेकिन कवि कहता है कि नीच भी मनुष्य है, अज्ञानी भी मनुष्य है, गरीब भी मनुष्य

है, दुर्जन भी मनुष्य है, क्रूर खूनी डाकू भी मनुष्य है और पागल भी मनुष्य है। यहाँ कवि को सार्थक संबंधों की खोज है। यह खोज सभी के लिए है और उसके पीछे कोई स्वार्थ या भेदभाव का डर नहीं है :–

*"ज्यादातर कुत्ते*
*पागल नहीं होते*
*न ज्यादातर जानवर*
*हमलावर*
*ज्यादातर आदमी*
*डाकू नहीं होते*
*न ज्यादातर जेबों में चाकू।*

*मैंने जिसे पागल*
*समझ कर*
*दुत्कार दिया था*
*वह मेरे बच्चे को ढूँढ़ रहा था*
*जिसने उसे प्यार दिया था।"*[11]

जहाँ राजनीति अलगाववादी तत्त्वों के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच नफरत की स्थिति पैदा करती है, कहाँ कवि प्रेम और सोहार्द्र उत्पन्न करना चाहता है। 'इन-दिनों' संकलन की कविता में नफरत और प्रेम इन दोनों विरोधी तत्त्वों का प्रयोग कर कुँवर नारायण ने अपने मंतव्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है–

*"एक अजीब-सी मुश्किल में हूँ इन दिनों–*
*मेरी भरपूर नफरत कर सकने की ताकत*
*दिनों-दिन क्षीण पड़ती जा रही है*
*अँग्रेजों से नफरत करना चाहता हूँ*
*जिन्होंने दो सदी हम पर राज किया,*
*तो शेक्सपियर आड़े आ जाते*

*मुसलमानों से नफरत करने चला*
*तो सामने गालिब आकर खड़े हो जाते।*

*सिखों से नफरत करना चाहता*
*तो गुरु नानक आँखों में छा जाते।"*[8]

कभी प्रेमी को धोखा देने वाली प्रेमिका के प्रति कवि आक्रोश व्यक्त करता है, परंतु :

*"वह प्रेमिका*
*जिससे मुझे पहला धोखा हुआ था*
*मिल जाये तो उसका खून कर दूँ!*
*मिलती भी है, मगर*
*कभी मित्र*
*कभी माँ*
*कभी बहन की तरह।"*[9]

सामाजिक समस्या हो, अथवा राजनीतिक; कुँवर नारायण की कविता में चिंता है, फिक्र है। समाज के हितों को केंद्र में रखकर उनकी कविताएँ सोचती हैं। कई जगह मिथकीय और ऐतिहाएिक संदर्भों द्वारा कवि वर्तमान के यथार्थ-बोध को अधिक विस्तृत, गहरा और विवेकी बनाता है। 'उसी जमीन पर' नामक एक कविता यहाँ द्रष्टव्य है :-

*"जिस जमीन के लिए*
*भाई-भाई लड़े हैं*
*हम आज भी उसी*
*जमीन पर खड़ी हैं*
*वे सिद्ध कर देंगे कि महाभारत*
*कवि की नहीं आज की बात है*
*हम सब एक नहीं, दो में बँटी*
*कौरवों और पांडवों की जात हैं।"*[10]

'हाशिए का गवाह' काव्य-संकलन की कविताओं के माध्यम से कुँवर नारायण अतीत का चित्रण करते हुए सामयिक समस्याओं का भी चित्रण करते हैं—'अतीत के गली-कूचों में' नामक कविता गालिब, मीर, कबीर, तुलसी और सूर को याद कर आधुनिकता पर विडंबना करते हैं—

*"शाही महलों से दूर*
*इतिहास के गली-कूचों में भटकती है*
*एक आवारा सनक कि इन्हीं में कहीं रहते हैं*
*आज भी गालिब और मीर*
*हो सकता है कबीर*
*किसी नदी के घाट पर*
*हो सकती है किसी*
*तुलसी या सूर की कुटिया...*
*ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं*
*और लकदक शहरों के ऊपर से*
*एक लश्कर हवाई जहाज*
*तेजी से।"*[11]

कवि सोचता है कि जीवन सतत संघर्ष है अगर जीवन सुंदर बनाना है, तो विवेक को अपनाना होगा, सोचना होगा, परखना होगा। इसलिए कहता है–

*"विनम्र अभिलाषाएँ हों,*
*बर्बर महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं*
*वाणी में कवित्व हो*
*कर्कश तर्क-वितर्क का घमासान नहीं।*
*कल्पना में इंद्रधनुषों के रंग हो*
*ईर्ष्या-द्वेष के बदरंग हादसे नहीं।*
*निकट संबंधों के माध्यम से*
*बोलता हो पास पड़ोस।"*[12]

कुँवर नारायण का बस इतना कहना है कि "वर्तमान की सही तरह से चिंता करें, तो भविष्य की सही चिंता अपने-आप हो जाती है। वर्तमान बहुत ठोस आधार है, जिसमें अतीत के उदाहरण और भविष्य के संकेत दोनों घुले-मिले हैं।

## संदर्भ

1. कुँवर नारायण : कविता का जनपद, संपादक : अशोक वाजपेयी, पृ. 14
2. कुँवर नारायण : 'चक्रव्यूह', पृ. 109
3. कुँवर नारायण : 'परिवेश : हम तुम', पृ. 88

4. कुँवर नारायण : 'अपने सामने', पृ. 95
5. कुँवर नारायण : 'कोई दूसरा नहीं', पृ. 7
6. कुँवर नारायण : 'कोई दूसरा नहीं', पृ. 70
7. कुँवर नारायण : 'कोई दूसरा नहीं, पृ. 45
8. कुँवर नारायण : 'इन दिनों', पृ. 9
9. कुँवर नारायण : 'इन दिनों, पृ. 10
10. कुँवर नारायण : 'इन दिनों, पृ.122
11. कुँवर नारायण : 'हाशिए का गवाह', पृ. 29
12. कुँवर नारायण : 'वाजश्रवा के बहाने'।

*हिंदी विभागाध्यक्ष, आरपीडी कला तथा वाणिज्य महाविद्यालय,*
*बेलगाँग (कर्नाटक)*